डल्लेवाल के अनशन के पचास दिन: आगे प्रतिरोध का तरीका बदलना चाहिए

प्रेम सिंह

यह अच्छी बात है कि संयुक्त किसान मोर्चा (एसकेएम) खनौरी बॉर्डर और शंभू बॉर्डर पर संयुक्त किसान मोर्चा (गैर-राजनीतिक) और किसान मजदूर मोर्चा के संयुक्त तत्वावधान में चल रहे किसानों के प्रतिरोध आंदोलन के प्रति सहयोगी रुख का संकेत दिया है। नेतृत्व के बीच बातचीत सकारात्मक वातावरण में चल रही है। आशा की जानी चाहिए कि पिछले अनुभवों से सबक लेकर और मतभेदों (अगर कोई हैं) को भुला कर देश के सभी किसान संगठन खेती-किसानीं की समस्याओं को सुलझाने की दिशा में एकजुट होंगे। जिस तरह किसानों की प्रमुख मांगों पर सहमति है, उसी तरह केंद्र और राज्य सरकारों से उन मांगों को मनवाने की रणनीति पर भी किसान नेतृत्व में सहमति होना जरूरी है। किसान आंदोलन की ऊर्जा का कारपोरेट राजनीति के खिलाड़ी बार-बार अपने पक्ष में इस्तेमाल न कर सकें, इसकी समझदारी भी किसान नेतृत्व में बननी चाहिए। यानि किसान नेतृत्व को संकट के तात्कालिक समाधान के साथ दूरगामी समाधान के प्रति भी सतत प्रतिबद्ध रहना चाहिए।

लेकिन फिलहाल दोनों संयुक्त किसान मोर्चों के नेताओं के सामने सबसे बड़ा काम वरिष्ठ किसान नेता जगजीत सिंह डल्लेवाल, जो खनौरी बॉर्डर पर पिछले 50 दिनों से आमरण अनशन पर हैं, की जान बचाना है। आंदोलन के साथ आए एसकेएम नेताओं को डल्लेवाल के आमरण अनशन को "मरण-व्रत" नहीं बनने देना चाहिए। देश में पिछले साढ़े तीन दशकों से जारी अंधाधुंध उदारीकरण/निजीकरण की प्रक्रिया में किसानों की जान की कुर्बानियां कम नहीं हुई हैं। लाखों किसान और खेतिहर मजदूर आत्महत्या कर चुके हैं। यह सिलसिला रुक-रुक कर अभी भी जारी है। शंभू और खनौरी बॉर्डर पर ही धरने में शामिल तीन किसान आत्महत्या कर चुके हैं। किसान नेताओं के मुताबिक तीन कृषि-कानूनों के खिलाफ चले साल भर लंबे किसान आंदोलन में 700 किसान शहीद हुए थे। अपनी ही सरकारों के खिलाफ छिड़ी जल-जंगल-जमीन की लड़ाई में बहुत से किसान सुरक्षा बलों की गोलियों का निशाना बन चुके हैं। 2020-21 के किसान प्रतिरोध के ट्रिगर पॉइंट मंदसौर गोलीकांड में 6 किसान पुलिस की गोली से मारे गए थे। अगर जान देने से जमीनों के अधिग्रहण और फसलों के कम दाम मिलने की समस्या का समाधान होना होता तो कब का हो चुका होता। अभी तक का अनुभव यही बताता है कि किसानों की जान की कुर्बानियों का असर शासक-वर्ग पर नहीं पड़ता है।

लिहाजा, सबसे पहले जगजीत सिंह डल्लेवाल के मरण-व्रत को तुड़वा कर उनकी जान बचाई जानी चाहिए। जान बचाने का मतलब आंदोलन समाप्त करना नहीं है। संघर्ष जारी रहे इसका नया रास्ता खोजा जा सकता है। एक रास्ता समूह सत्याग्रह-उपवास का हो सकता है। एक निश्चित संख्या में किसानों का समूह 21 (या कम-ज्यादा) दिनों का सत्याग्रह-उपवास करे। 21 दिन बाद दूसरा समूह सत्याग्रह-उपवास पर बैठे। यह सिलसिला चलता रहे जब तक सरकार के साथ मांगों पर संतोषजनक सहमति न बने। देश के दूसरे भागों के किसान अपनी-अपनी जगह सत्याग्रह-उपवास में शामिल हो सकते हैं। देश की खेती-किसानी का संकट खेतिहर मजदूरों से लेकर संगठित-असंगठित क्षेत्र के मजदूरों

और खुदरा क्षेत्र की ब्रांड-खिलाड़ी राष्ट्रीय/बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सेवा में जुते रहने वाले मजदूरों के जीवन को सीधे प्रभावित करता है। लिहाजा, कम से कम संगठित-असंगठित क्षेत्र की मजदूर यूनियनें सत्याग्रह-उपवास में शामिल हो सकती हैं। छोटे व्यापारी और उद्यमी भी अपनी सहूलियत और रणनीति के अनुसार हिस्सेदारी कर सकते हैं। सेवा और व्यापार-उद्योग क्षेत्र के सरोकारधर्मी नागरिक चाहें तो सत्याग्रह-उपवास में सहयोग कर सकते हैं। यह नहीं तो प्रतिरोध की कोई अन्य कार्य-प्रणाली (मोड ऑफ एक्शन) अपनाई जा सकती है। लेकिन डल्लेवाल का मरण-व्रत तत्काल टूटना चाहिए।

प्रतिरोध की नई रणनीति के साथ कृषि-क्षेत्र पर आयद संकट के तात्कालिक और दूरगामी समाधान के बारे में भी किसानों को सोचना होगा। फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य की कानूनी गारंटी, कर्ज-माफी आदि तात्कालिक उपाय जरूर होने चाहिए, लेकिन वह संकट का समाधान नहीं है। यह लंबा संघर्ष है। अभी तक का अनुभव है कि किसान आंदोलन नवउदारवादी शक्तियों के पक्ष में इस्तेमाल हुआ है। किशन पटनायक का कहना है किसान आंदोलन को अपनी राजनीति भी गढ़नी चाहिए। किशन पटनायक का आशय नवउदारवाद विरोध की राजनीति गढ़ने से है। चाहे अस्सी और नब्बे के दशकों का किसान आंदोलन रहा हो, या इक्कीसवीं सदी का किसान आंदोलन, अभी तक यही देखने में आया है कि किसान नेतृत्व केवल नवउदारवाद के विरोध तक जाता है। नवउदारवाद के विरोध की राजनीति गढ़ने में किसान नेतृत्व की रुचि प्राय: नहीं रही है। राजनीति के लिए वह मुख्यधारा राजनीति पर ही निर्भर रहता है। साथ ही वह धर्म, जाति, क्षेत्र और पितृसत्ता के कटघरों में कैद नजर आता है। फिर भी, नई राजनीति के निर्माण की संभावनाओं का सबसे बड़ा क्षेत्र भारत का किसान जीवन ही हो सकता है।

किसान नेतृत्व को यह हकीकत समझनी होगी कि देश में नवउदारवादी सर्वसम्मति (निओलिबरल कंसेंसस) की स्थिति में कृषि जैसा विशाल क्षेत्र नवउदारवादी तंत्र से स्वायत्त बना नहीं रह सकता। देर-सवेर नवउदारवादी व्यवस्था के साथ उसका इंटिग्रेशन होना ही है। इंटिग्रेशन की प्रक्रिया को गति देने के लिए मोदी सरकार ने तीन कृषि-कानून संसद में पारित किए थे। किसानों के लंबे प्रतिरोध के चलते सरकार ने कानून वापस तो ले लिए थे, लेकिन साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया था कि उन कानूनों को जल्दी ही फिर से लाया जाएगा। ऐसा होगा भी। तीनों कृषि-कानून, भले ही कुछ बदले हुए रूप में, देर-सवेर फिर से आएंगे।

भारत का शासक-वर्ग कृषि-संकट का समाधान कृषि के निगमीकरण में देखता है। हालांकि, यूरोप-अमेरिका का अनुभव बताता है कि निगमीकृत खेती भी संकटग्रस्त है। भारी सब्सिडी के बावजूद वहां किसानों को बार-बार सड़कों पर आना पड़ता है। वाशिंगटन सहमति के एक दशक बाद नवंबर 1999 में विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के मंत्री स्तरीय सम्मेलन स्थल पर निगमीकरण के खिलाफ हुआ मशहूर सिएटल प्रतिरोध भारत सहित दुनिया के सामने है। लेकिन शासक-वर्ग आयातित निगम मॉडल से अलग किसी वैकल्पिक मॉडल के बारे में सोचने को तैयार नहीं लगता।

यह काम किसान नेतृत्व को ही करना है। भारत में कृषि-अर्थशास्त्रियों की मुख्यत: दो कोटियां हैं। एक वे हैं जो इस संकट को निगम-केंद्रित (कारपोरेट सेंट्रिक) नजरिए से देखते और कृषि के निगमीकरण में ही संकट का समाधान मानते हैं। दूसरे वे हैं जो संकट को संविधान-केंद्रित अर्थात राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के नजरिए से देखते और हल करना चाहते हैं। यहां देविंदर शर्मा का जिक्र करना मुनासिब होगा। वे कृषि मामलों के पब्लिक बुद्धिजीवी हैं। उन्हें दोनों मॉडलों - निगम-केंद्रित और संविधान-केंद्रित - की गहरी जानकारी है। इसके साथ वे दुनिया के सभी देशों की कृषि की स्थिति की अच्छी जानकारी रखते हैं। किसान आंदोलन में उनकी भागीदारी भी रहती है। उनका अपना रुझान कृषि-संकट के संविधान-केंद्रित समाधान की तरफ रहता है। किसान नेतृत्व को देविंदर शर्मा जैसे सरोकारधर्मी बुद्धिजीवियों को साथ लेकर; ऊपर की दोनों कोटियों के कृषि-अर्थशास्त्रियों के साथ विचार-विमर्श करके भारत की कृषि के संकट का तात्कालिक और दूरगामी समाधान निकालने का प्रयास करना चाहिए।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फ़ेलो हैं।*)